Chapter बारह

अघासुर का वध

इस अध्याय में अघासुर वध नामक कृष्ण-लीला का विस्तार से वर्णन हुआ है।

एक दिन कृष्ण ने जंगल में विहार गोष्ठी (पिकनिक) करनी चाही अतएव वे प्रात:काल ही अन्य ग्वालबालों के साथ अपने अपने बछड़ों की टोली समेत जंगल में चले गये। जब वे भोजन-पान कर रहे थे तभी पूतना तथा बकासुर का भाई अघासुर कृष्ण तथा उनके संगियों को मारने के उद्देश्य से प्रकट हुआ। कंस द्वारा भेजे गये इस असुर ने अजगर का रूप बनाया और उसने अपना विस्तार आठ मील तक कर लिया। उसकी ऊँचाई पर्वत जैसी हो गई, उसका मुँह पृथ्वी से लेकर आकाश तक फैल गया। अघासुर ऐसा वेश बनाकर रास्ते में लेट गया। कृष्ण के मित्रों ने सोचा कि यह असुर-रूप वृन्दावन का कोई रमणीक स्थल है। इस तरह वे इस विशाल अजगर के मुख के भीतर घुसने के लिए इच्छुक हो उठे। उनके लिए अजगर का विशाल रूप खिलवाड़ बन गया। वे हँसने लग पड़े क्योंकि वे आश्वस्त थे कि यदि यह रूप खतरनाक भी हो तो उन्हें डरने की कोई बात नहीं क्योंकि कृष्ण उनकी रक्षा करने के लिए साथ हैं। इस तरह वे विशाल आकृति के मुख की ओर बढ़ने लगे।

कृष्ण अघासुर के बारे में अच्छी तरह जानते थे अतएव वे अपने मित्रों को असुर के मुख में घुसने से मना करना चाह रहे थे किन्तु तब तक सारे ग्वाले अपने अपने बछड़ों की टोलियों समेत उस विशाल आकृति के मुख में घुस चुके थे। कृष्ण बाहर प्रतीक्षा कर रहे थे और अघासुर यह सोच कर कृष्ण की प्रतीक्षा में था कि ज्योंही वे घुसें कि वह अपना मुँह बन्द कर ले तो सारे लोग मर जायेंगे। कृष्ण की प्रतीक्षा में उसने बालकों को नहीं निगला। तभी कृष्ण सोच में थे कि किस तरह बालकों को बचाया जाय और अघासुर का वध किया जाये। अत: वे भी उस विशाल असुर के मुँह में घुस गये और जब वे अपने मित्रों समेत उस असुर के मुख में थे तो उन्होंने अपने शरीर को इतना बढ़ाया कि असुर का श्वास रुक गया और वह मर गया। इसके बाद कृष्ण ने अमृत-दृष्टि फेर कर अपने मित्रों को जीवित किया जिससे सभी हँसते-खेलते बाहर आ गये। इस तरह कृष्ण ने देवताओं को प्रोत्साहित किया और उन्होंने परम प्रसन्नता व्यक्त की। दुष्ट तथा पापी व्यक्ति के लिए *सायुज्यमुक्ति* की कोई गुंजाईश नहीं

रहती किन्तु कृष्ण द्वारा अघासुर के शरीर में प्रविष्ट होने तथा उनके स्पर्शमात्र से उस असुर को सायुज्य मुक्ति प्राप्त हुई।

जब यह लीला सम्पन्न हुई तो कृष्ण अभी केवल पाँच वर्ष के थे। एक वर्ष बाद जब वे छः वर्ष के हुए और उन्होंने *पौगण्ड* अवस्था में प्रवेश किया तब व्रजवासियों को यह लीला बतलाई गई। परीक्षित महाराज ने पूछा, ''क्या कारण है कि यह लीला एक वर्ष बाद प्रकट की गई फिर भी व्रजवासियों ने सोचा कि यह उसी दिन घटित हुई है?'' इसी प्रश्न के साथ बारहवें अध्याय का अन्त होता है।

श्रीशुक उवाच
क्वचिद्वनाशाय मनो दधद्व्रजात्
प्रातः समुत्थाय वयस्यवत्सपान् ।
प्रबोधयञ्छृङ्गरवेण चारुणा
विनिर्गतो वत्सपुरःसरो हरिः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; क्वचित्—एक दिन; वन-आशाय—जंगल में विहार करने हेतु; मनः—मन; दधत्—ध्यान दिया; व्रजात्—व्रजभूमि से बाहर गये; प्रातः—सुबह होते ही; समुत्थाय—जग कर; वयस्य-वत्स-पान्—ग्वालबालों तथा बछड़ों को; प्रबोधयन्—जगाकर बतलाते हुए; शृङ्ग-रवेण—सींग के बने बिगुल से आवाज करते हुए; चारुणा—अत्यन्त सुन्दर; विनिर्गतः—व्रजभूमि से बाहर आये; वत्स-पुरःसरः—बछड़ों को आगे करके; हरिः—भगवान्।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजन्, एक दिन कृष्ण ने जंगल में विहार करते हुए कलेवा करना चाहा। उन्होंने बड़े सुबह उठ कर सींग का बिगुल बजाया तथा उसकी मधुर आवाज से ग्वालबालों तथा बछड़ों को जगाया। फिर कृष्ण तथा सारे बालक अपने अपने बछड़ों के समूहों को आगे करके व्रजभूमि से जंगल की ओर बढ़े।

तेनैव साकं पृथुकाः सहस्रशः
स्निग्धाः सुशिग्वेत्रविषाणवेणवः ।
स्वान्स्वान्सहस्रोपरिसङ्ख्ययान्वितान्
वत्सान्पुरस्कृत्य विनिर्ययुर्मुदा ॥ २ ॥

शब्दार्थ

तेन—उनके; एव—निस्सन्देह; साकम्—साथ; पृथुकाः—बालक; सहस्रशः—हजारों; स्निग्धाः—अत्यन्त आकर्षक; सु—सुन्दर; शिक्—कलेवा की पोटली; वेत्र—बछड़े हाँकने के लिए लाठियाँ; विषाण—सींग के बने बिगुल; वेणवः—बाँसुरियाँ; स्वान् स्वान्—अपनी अपनी; सहस्र-उपरि-सङ्ख्यया अन्वितान्—संख्या में एक हजार से ऊपर; वत्सान्—बछड़ों को; पुरः-कृत्य—आगे करके; विनिर्ययुः—बाहर आ गये; मुदा—प्रसन्नतापूर्वक।

उस समय लाखों ग्वालबाल व्रजभूमि में अपने अपने घरों से बाहर आ गये और अपने साथ

के लाखों बछड़ों की टोलियों को अपने आगे करके कृष्ण से आ मिले। ये बालक अतीव सुन्दर थे। उनके पास कलेवा की पोटली, बिगुल, वंशी तथा बछड़े चराने की लाठियाँ थीं।

कृष्णवत्सैरसङ्ख्यातैर्यूथीकृत्य स्ववत्सकान् ।
चारयन्तोऽर्भलीलाभिर्विजह्रुस्तत्र तत्र ह ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

कृष्ण—कृष्ण का; वत्सैः—बछड़ों के साथ; असङ्ख्यातैः—अनन्त; यूथी-कृत्य—उन्हें एकत्र करके; स्व-वत्सकान्—अपने बछड़ों को; चारयन्तः—चराते हुए; अर्भ-लीलाभिः—बाल-लीलाओं द्वारा; विजह्रुः—आनन्द मनाया; तत्र तत्र—यहाँ वहाँ; ह—निस्सन्देह।

कृष्ण ग्वालबालों तथा उनके बछड़ों के समूहों के साथ बाहर निकले तो असंख्य बछड़े एकत्र हो गये। तब सारे लड़कों ने जंगल में परम प्रसन्न होकर खेलना प्रारम्भ कर दिया।

तात्पर्य : इस श्लोक में *कृष्णवत्सैरसंख्यातै* शब्द महत्त्वपूर्ण है। *असंख्यात्* का अर्थ है ''अनन्त।'' कृष्ण के बछड़े अनन्त थे। अनन्त का अर्थ है सौ, हजार, लाख, करोड़ नहीं अपितु इन सबसे अधिक। कृष्ण अनन्त हैं और उनकी शक्ति अनन्त है। उनकी गौवें तथा बछड़े अनन्त हैं और उनका स्थान भी अनन्त है। इसीलिए *भगवद्गीता* में उन्हें परब्रह्म कहा गया है। *ब्रह्मन्* का अर्थ ही है ''अनन्त।'' कृष्ण परब्रह्म हैं अतएव हमें इस श्लोक के कथनों को काल्पनिक नहीं मानना चाहिए। वे यथार्थ हैं किन्तु हैं अचिन्त्य। कृष्ण असंख्य बछड़ों को तथा असंख्य स्थानों को सँभाल सकते हैं। यह न तो काल्पनिक है, न मिथ्या किन्तु यदि हम अपने सीमित ज्ञान से कृष्ण की शक्ति को जानना चाहें तो यह शक्ति कभी समझ में नहीं आयेगी। *अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद्ग्राह्यमिन्द्रियै* (*भक्तिरसामृत सिन्धु* १.२.१०९)। हमारी इन्द्रियाँ इसका अनुमान ही नहीं लगा सकतीं कि कृष्ण ने किस तरह असंख्य बछड़ों तथा गौवों को सँभाला होगा और ऐसा करने के लिए उनके पास असीम स्थान रहा होगा। किन्तु इसका उत्तर *बृहद् भागवतामृत* में मिलता है—

एवं प्रभोः प्रियानां च धाम्नश्च समयस्य च।

अविचिन्त्यप्रभावत्वाद् अत्र किञ्चिन्न दुर्घटम्॥

श्री सनातन गोस्वामी ने *बृहद् भागवतामृत* में बतलाया है कि कृष्ण विषयक हर वस्तु असीम है अतएव उनके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। हमें इसी परिप्रेक्ष्य में इस श्लोक को समझना चाहिए।

फलप्रबालस्तवकसुमनःपिच्छधातुभिः ।
काचगुञ्जामणिस्वर्णभूषिता अप्यभूषयन् ॥ ४॥

शब्दार्थ

फल—जंगल के फल; प्रबाल—हरी पत्तियाँ; स्तवक—गुच्छे; सुमनः—सुन्दर फूल; पिच्छ—मोरपंख; धातुभिः—रंगीन खनिज पदार्थ, गेरू द्वारा; काच—एक प्रकार का पत्थर; गुञ्जा—छोटे छोटे शंख; मणि—मोती; स्वर्ण—सोना; भूषिताः—अलंकृत; अपि अभूषयन्—माताओं द्वारा सजाये जाने पर भी स्वयं इन वस्तुओं से अपने को सजाने लगे।

यद्यपि इन बालकों की माताओं ने पहले से इन्हें काच, गुञ्जा, मोती तथा सोने के आभूषणों से सजा रखा था किन्तु फिर भी जंगल में जाकर उन्होंने फलों, हरी पत्तियों, फूलों के गुच्छों, मोरपंखों तथा गेरू से अपने को सजाया।

मुष्णन्तोऽन्योन्यशिक्यादीन्ज्ञातानाराच्च चिक्षिपुः ।
तत्रत्याश्च पुनर्दूराद्धसन्तश्च पुनर्ददुः ॥ ५॥

शब्दार्थ

मुष्णन्तः—चुराते हुए; अन्योन्य—एक-दूसरे से; शिक्य-आदीन्—कलेवा के डिब्बे तथा अन्य वस्तुएँ; ज्ञातान्—उसके असली मालिक द्वारा जान लिये जाने पर; आरात् च—दूर स्थान को; चिक्षिपुः—फेंक दिया; तत्रत्याः च—जो उस स्थान पर थे, वे भी; पुनः दूरात्—और आगे; हसन्तः च पुनः ददुः—हँसते हुए फिर से मालिक को लौटा दिया।

सारे ग्वालबाल एक-दूसरे की कलेवा की पोटली चुराने लगे। जब कोई बालक जान जाता कि उसकी पोटली चुरा ली गयी है, तो दूसरे लड़के उसे दूर फेंक देते और वहाँ पर खड़े बालक उसे और दूर फेंक देते। जब पोटली का मालिक निराश हो जाता तो दूसरे बालक हँस पड़ते और मालिक रो देता तब वह पोटली उसे लौटा दी जाती।

तात्पर्य : इस तरह का खेल और चोरी अब भी भौतिक जगत में पाई जाती है क्योंकि इस प्रकार का मनोरंजन आध्यात्मिक जगत में विद्यमान है जहाँ से यह आनन्द का भाव प्रस्तुत होता है। *जन्माद्यस्य यतः* (*वेदान्त सूत्र* १.१.२)। यही भाव आध्यात्मिक जगत में कृष्ण तथा उनके संगियों द्वारा प्रदर्शित किया जाता है किन्तु वहाँ का यह उल्लास शाश्वत है, जबकि भौतिक जगत में वही क्षणिक होता है। वहाँ का उल्लास ब्रह्म होता है और यहाँ का *जड़*। कृष्णभावनामृत आन्दोलन मनुष्य को यह शिक्षा देने के लिए है कि वह किस तरह अपने को जड़ से ब्रह्म में स्थानान्तरित कर सकता है क्योंकि मनुष्य जीवन इसी के निमित्त है। *अथातो ब्रह्मजिज्ञासा* (*वेदान्त सूत्र* १.१.१)। कृष्ण हमें यह शिक्षा देने के लिए अवतरित होते हैं कि हम किस तरह आध्यात्मिक जगत में उनके साथ आध्यात्मिक पद पर आनन्द पा सकते हैं। वे न केवल आते हैं अपितु वृन्दावन में लीलाओं का प्रदर्शन करते हैं और लोगों

को आध्यात्मिक भोग के प्रति आकृष्ट करते हैं।

यदि दूरं गतः कृष्णो वनशोभेक्षणाय तम् ।
अहं पूर्वमहं पूर्वमिति संस्पृश्य रेमिरे ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

यदि—यदि; दूरम्—दूर स्थान को; गतः—गये; कृष्णः—कृष्ण; वन-शोभ—जंगल का सौन्दर्य; ईक्षणाय—देखने तथा आनन्द लेने के लिए; तम्—कृष्ण को; अहम्—मैं; पूर्वम्—प्रथम; अहम्—मैं; पूर्वम्—प्रथम; इति—इस प्रकार; संस्पृश्य—उन्हें छू कर; रेमिरे—जीवन का आनन्द लेते।

कभी कभी कृष्ण जंगल की शोभा देखने के लिए दूर तक निकल जाते। तो सारे बालक उनके साथ जाने के लिए, यह कहते हुए दौते, ''दौड़ कर कृष्ण को छूने वाला मैं पहला हूँगा! मैं कृष्ण को सबसे पहले छुऊँगा।'' इस तरह वे कृष्ण को बारम्बार छू-छू कर जीवन का आनन्द लेते।

केचिद्वेणून्वादयन्तो ध्मान्तः शृङ्गाणि केचन ।
केचिद्भृङ्गैः प्रगायन्तः कूजन्तः कोकिलैः परे ॥ ७ ॥
विच्छायाभिः प्रधावन्तो गच्छन्तः साधुहंसकैः ।
बकैरुपविशन्तश्च नृत्यन्तश्च कलापिभिः ॥ ८ ॥
विकर्षन्तः कीशबालानारोहन्तश्च तैर्द्रुमान् ।
विकुर्वन्तश्च तैः साकं प्लवन्तश्च पलाशिषु ॥ ९ ॥
साकं भेकैर्विलङ्घन्तः सरितः स्रवसम्प्लुताः ।
विहसन्तः प्रतिच्छायाः शपन्तश्च प्रतिस्वनान् ॥ १० ॥
इत्थं सतां ब्रह्मसुखानुभूत्या
दास्यं गतानां परदैवतेन ।
मायाश्रितानां नरदारकेण
साकं विजह्रुः कृतपुण्यपुञ्जाः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

केचित्—उनमें से कोई; वेणून्—बाँसुरियों को; वादयन्तः—बजाते हुए; ध्मान्तः—बजाते; शृङ्गाणि—सींग का बिगुल; केचन—अन्य कोई; केचित्—कोई; भृङ्गैः—भौंरों के साथ; प्रगायन्तः—गाते हुए; कूजन्तः—कूजते हुए; कोकिलैः—कोयलों के साथ; परे—अन्य; विच्छायाभिः—दौड़ती परछाइयों के साथ; प्रधावन्तः—चिड़ियों के पीछे दौते हुए; गच्छन्तः—साथ साथ जाते हुए; साधु—सुन्दर; हंसकैः—हंसों के साथ; बकैः—एक स्थान पर बैठे बगुलों के साथ; उपविशन्तः च—उन्हीं के समान चुपचाप बैठते हुए; नृत्यन्तः च—तथा नाचते हुए; कलापिभिः—मोरों के साथ; विकर्षन्तः—आकर्षित करते हुए; कीश-बालान्—बन्दरों के बच्चों को; आरोहन्तः च—चढ़ते हुए; तैः—बन्दरों के साथ; द्रुमान्—वृक्षों पर; विकुर्वन्तः च—उनकी नकल करते हुए; तैः—उनके; साकम्—के साथ; प्लवन्तः च—कूदते हुए; पलाशिषु—वृक्षों पर; साकम्—साथ; भेकैः—मेंढ़कों के; विलङ्घन्तः—उन्हीं की तरह कूदते हुए; सरितः—जल; स्रव-सम्प्लुताः—नदी के जल में भीग गये; विहसन्तः—हँसते हुए; प्रतिच्छायाः—परछाईं पर; शपन्तः च—निन्दा करते हुए; प्रतिस्वनान्—अपनी प्रतिध्वनि की आवाज; इत्थम्—इस प्रकार; सताम्—अध्यात्मवादियों का; ब्रह्म-सुख-अनुभूत्या—ब्रह्म-सुख के उद्गम, कृष्ण के साथ; दास्यम्—दास्यभाव; गतानाम्—भक्तों का जिन्होंने स्वीकार किया है; पर-दैवतेन—भगवान् के साथ; माया-आश्रितानाम्—माया के वशीभूतों के लिए; नर-

दारकेण—जिन्होंने सामान्य बालक के सदृश उनके साथ; साकम्—साथ में; विजह्रुः—आनन्द लूटा; कृत-पुण्य-पुञ्जाः—ये सारे बालक जिन्होंने जन्म-जन्मांतर के पुण्यकर्मों के फल एकत्र कर रखे थे।.

सारे बालक भिन्न भिन्न कार्यों में व्यस्त थे। कुछ अपनी बाँसुरियाँ बजा रहे थे, कुछ सींग का बिगुल बजा रहे थे। कुछ भौरों की गुंजार की नकल तो अन्य बालक कोयल की कुहू कुहू की नकल कर रहे थे। कुछ बालक उड़ती चिड़ियों की भूमि पर पड़ने वाली परछाइयों के पीछे दौड़ कर उनकी नकल कर रहे थे, तो कुछ हंसों की सुन्दर गति तथा उनकी आकर्षक मुद्राओं की नकल उतार रहे थे। कुछ चुपचाप बगुलों के पास बैठ गये और अन्य बालक मोरों के नाच की नकल करने लगे। कुछ बालकों ने वृक्षों के बन्दरों को आकृष्ट किया, कुछ इन बन्दरों की नकल करतेहुए पेड़ों पर कूदने लगे। कुछ बन्दरों जैसा मुँह बनाने लगे और कुछ एक डाल से दूसरी डाल पर कूदने लगे। कुछ बालक झरने के पास गये और उन्होंने मेंढ़कों के साथ उछलते हुए नदी पार की और पानी में अपनी परछाईं देख कर वे हँसने लगे। वे अपनी प्रतिध्वनि की आवाज की निन्दा करते। इस तरह सारे बालक उन कृष्ण के साथ खेला करते जो ब्रह्मज्योति में लीन होने के इच्छुक ज्ञानियों के लिए उसके उद्गम हैं और उन भक्तों के लिए भगवान् हैं जिन्होंने नित्यदासता स्वीकार कर रखी है किन्तु सामान्य व्यक्तियों के लिए वे ही एक सामान्य बालक हैं। ग्वालबालों ने अनेक जन्मों के पुण्यकर्मों का फल संचित कर रखा था फलतः वे इस तरह भगवान् के साथ रह रहे थे। भला उनके इस महाभाग्य का वर्णन कौन कर सकता है?

तात्पर्य : श्रील रूप गोस्वामी ने संस्तुति की है (*भक्तिरसामृत सिन्धु* १.२.४)—*तस्मात् केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत्।* कृष्ण को कोई चाहे सामान्य बालक समझे, चाहे ब्रह्मतेज का उद्गम, चाहे परमात्मा का उत्स या भगवान् माने, उसे चाहिए कि वह कृष्ण के चरणकमलों में अपना ध्यान पूरी तरह से केन्द्रित करे। यही *भगवद्गीता* का भी (१८.६६) उपदेश है—*सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।* कृष्ण तक सीधे पहुँचने का सरलतम साधन *श्रीमद्भागवत* है। *ईश्वरः सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्* (*भागवत* १.१.२)। यदि मनुष्य अपना थोड़ा भी ध्यान कृष्ण तथा उनके कार्यकलापों की ओर लगाये तो उसे जीवन की सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त हो सकती है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन का यही उद्देश्य है। *लोकस्याजानतो विद्वांश्चक्रे सात्वतसंहिताम्* (*भागवत* १.७.६)। सफलता का रहस्य सामान्य लोगों को ज्ञात नहीं इसीलिए इस जगत के दीनजनों के प्रति

दया-भाव से, विशेष रूप से इस कलियुग में, श्रील व्यासदेव ने हमें *श्रीमद्भागवत* प्रदान किया है। *श्रीमद्भागवतं पुराणं अमलं यद् वैष्णवानां प्रियम्* (*भागवत* १२.१३.१८)। वे वैष्णवजन, जो कुछ बढ़े-चढ़े हैं या जो भगवान् की महिमा तथा शक्ति से भलीभाँति परिचित हैं उनके लिए *श्रीमद्भागवत* प्रिय वैदिक ग्रंथ है। अन्ततः हमें इस शरीर को बदलना होगा (*तथा देहान्तरप्राप्तिः*)। यदि हम *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* की परवाह नहीं करेंगे तो न जाने हमें अगला शरीर कैसा मिले। किन्तु जो व्यक्ति इन दोनों ग्रंथों पर अटल रहता है उसे अगले जीवन में अवश्य ही कृष्ण की संगति प्राप्त होगी। (*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मां एति सोऽर्जुन*)। अतः सारे विश्व में *श्रीमद्भागवत* का वितरण धर्मज्ञों, दार्शनिकों, अध्यात्मवादियों तथा योगियों, यहाँ तक कि आम जनता के लिए एक महान् कल्याण-कार्य है। (*योगिनां अपि सर्वेषाम्*)। *जन्मलाभः परः पुंसामन्ते नारायणस्मृतिः* (*भागवत* २.१.६)—यदि हम अपने जीवन के अन्तिम क्षण में कृष्ण या नारायण का येनकेन प्रकारेण स्मरण कर सकें तो हमारा जीवन सफल हो जायेगा।

यत्पादपांसुर्बहुजन्मकृच्छ्रतो
धृतात्मभिर्योगिभिरप्यलभ्यः ।
स एव यद्दृग्विषयः स्वयं स्थितः
किं वर्ण्यते दिष्टमतो व्रजौकसाम् ॥ १२॥

शब्दार्थ

यत्—जिसके; पाद-पांसुः—चरणकमलों की धूल; बहु-जन्म—अनेक जन्मों में; कृच्छ्रतः—योग, ध्यान आदि के लिए कठिन तपस्या करने से.; धृत-आत्मभिः—मन को वश में रखने वालों के द्वारा; योगिभिः—ऐसे योगियों द्वारा (ज्ञानयोगी, राजयोगी, ध्यानयोगी इत्यादि); अपि—निस्सन्देह; अलभ्यः—प्राप्त न किया जा सकने वाली; सः—भगवान्; एव—निस्सन्देह; यत्-दृक्-विषयः—साक्षात् दर्शन की वस्तु बन गया है; स्वयम्—स्वयं; स्थितः—उनके समक्ष उपस्थित; किम्—क्या; वर्ण्यते—वर्णन किया जा सकता है; दिष्टम्—भाग्य के विषय में; अतः—इसलिए; व्रज-ओकसाम्—व्रजभूमि वृन्दावन के वासियों के।.

भले ही योगी अनेक जन्मों तक यम, नियम, आसन तथा प्राणायाम द्वारा जिनमें से कोई भी सरलता से नहीं किया जा सकता है, कठोर से कठोर तपस्या करें फिर भी समय आने पर जब इन योगियों को मन पर नियंत्रण करने की सिद्धि प्राप्त हो जाती है, तो भी वे भगवान् के चरणकमलों की धूल के एक कण तक का आस्वाद नहीं कर सकते। तो भला व्रजभूमि वृन्दावन के निवासियों के महाभाग्य के विषय में क्या कहा जाय जिनके साथ साथ साक्षात् भगवान् रहे और जिन्होंने उनका प्रत्यक्ष दर्शन किया?

तात्पर्य : हम वृन्दावनवासियों के महाभाग्य का केवल अनुमान लगा सकते हैं। यह वर्णन कर पाना असम्भव है कि किस तरह अनेकानेक जन्मों के पुण्यकर्मों के परिणामस्वरूप वे इतने भाग्यशाली बन सके।

अथाघनामाभ्यपतन्महासुर-
स्तेषां सुखक्रीडनवीक्षणाक्षमः ।
नित्यं यदन्तर्निजजीवितेप्सुभिः
पीतामृतैरप्यमरैः प्रतीक्ष्यते ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; अघ-नाम—अघ नामक शक्तिशाली असुर; अभ्यपतत्—उस स्थान पर प्रकट हुआ; महा-असुरः—महान, अत्यन्त शक्तिशाली असुर; तेषाम्—ग्वालबालों की; सुख-क्रीडन—दिव्य लीलाओं का आनन्द; वीक्षण-अक्षमः—देख कर सहन कर पाने में अक्षम; नित्यम्—शाश्वत; यत्-अन्तः—अघासुर का अन्त; निज-जीवित-ईप्सुभिः—अघासुर द्वारा बिना सताये हुए जीने के लिए; पीत-अमृतैः अपि—प्रतिदिन अमृत-पान करते हुए भी; अमरैः—देवताओं द्वारा; प्रतीक्ष्यते—प्रतीक्षा की जा रही थी (देवता भी अघासुर के वध की प्रतीक्षा कर रहे थे)।

हे राजा परीक्षित, तत्पश्चात् वहाँ पर एक विशाल असुर प्रकट हुआ जिसका नाम अघासुर था और देवता तक जिसकी मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे थे। यद्यपि देवता प्रतिदिन अमृत-पान करते थे फिर भी वे इस महान् असुर से डरते थे और उसकी मृत्यु की प्रतीक्षा में थे। यह असुर जंगल में ग्वालबालों द्वारा मनाये जा रहे दिव्य आनन्द को सहन नहीं कर सका।

तात्पर्य : यह प्रश्न किया जा सकता है कि किसी असुर द्वारा कृष्ण-लीलाओं में विघ्न कैसे पहुँचाया जा सकता है? श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर इस प्रश्न का उत्तर यह कहते हुए देते हैं कि यद्यपि ग्वालबालों द्वारा मनाया जा रहा दिव्य आनन्द रोका नहीं जा सकता था किन्तु यदि उन्हें रोका न जाता तो वे अपना कलेवा न खा पाते। अतः उनके कलेवा के समय योगमाया की व्यवस्थानुसार वह अघासुर प्रकट हुआ जिससे वे थोड़ी देर के लिए अपनी क्रीड़ाएँ छोड़ कर कलेवा खा सकें। आनन्द तो परिवर्तन से आता है। ग्वालबाल लगातार खेलते रहते, फिर रुक जाते और तब दूसरी प्रकार से आनन्द मनाते। इसीलिए प्रतिदिन एक असुर आता और उनकी क्रीड़ाओं में बाधा डालता। तब वह असुर मारा जाता और बच्चे फिर से अपनी दिव्य लीलाओं में लग जाते।

दृष्ट्वार्भकान्कृष्णमुखानघासुरः
कंसानुशिष्टः स बकीबकानुजः ।

अयं तु मे सोदरनाशकृत्तयो-
द्वयोर्ममैनं सबलं हनिष्ये ॥ १४॥

शब्दार्थ

द्दष्ट्वा—देख कर; अर्भकान्—सारे ग्वालबालों को; कृष्ण-मुखान्—कृष्ण आदि; अघासुरः—अघासुर नामक राक्षस; कंस-अनुशिष्टः—कंस द्वारा भेजा गया; सः—वह (अघासुर); बकी-बक-अनुजः—पूतना तथा बकासुर का छोटा भाई; अयम्—यह कृष्ण; तु—निस्सन्देह; मे—मेरा; सोदर-नाश-कृत्—भाई तथा बहिन का मारने वाला; तयोः—अपने भाई तथा बहिन के लिए; द्वयोः—दोनों के लिए; मम—मेरा; एनम्—कृष्ण को; स-बलम्—उसके सहायक ग्वालबालों समेत; हनिष्ये—जान से मारूँगा।

कंस द्वारा भेजा गया अघासुर पूतना तथा बकासुर का छोटा भाई था। अतएव जब वह आया और उसने देखा कि कृष्ण सारे ग्वालबालों का मुखिया है, तो उसने सोचा, ''इस कृष्ण ने मेरी बहन पूतना तथा मेरे भाई बकासुर का वध किया है। अतएव इन दोनों को तुष्ट करने के लिए मैं इस कृष्ण को इसके सहायक अन्य ग्वालबालों समेत मार डालूँगा।''

एते यदा मत्सुहृदोस्तिलापः
कृतास्तदा नष्टसमा व्रजौकसः ।
प्राणे गते वर्ष्मसु का नु चिन्ता
प्रजासवः प्राणभृतो हि ये ते ॥ १५॥

शब्दार्थ

एते—यह कृष्ण तथा उसके संगी ग्वालबाल; यदा—जब; मत्-सुहृदोः—मेरे भाई तथा बहिन का; तिल-आपः कृताः—तिल तथा जल से अन्तिम संस्कार हो; तदा—उस समय; नष्ट-समाः—प्राणविहीन; व्रज-ओकसः—व्रजभूमि वृन्दावन के सारे निवासी; प्राणे—प्राण के; गते—निकल जाने पर; वर्ष्मसु—जहाँ तक शरीर का सम्बन्ध है; का—क्या; नु—निस्सन्देह; चिन्ता—सोच-विचार; प्रजा-असवः—अपने बच्चों के लिए जिनका प्रेम अपने जीवन के प्रति प्रेम जैसा ही है; प्राण-भृतः—वे जीव; हि—निस्सन्देह; ये ते—ये सारे व्रजभूमिवासी।

अघासुर ने सोचा: यदि मैं किसी तरह कृष्ण तथा उनके संगियों को अपने भाई तथा बहिन की दिवंगत आत्माओं के लिए तिल तथा जल की अन्तिम भेंट बना सकूँ तो व्रजभूमि के सारे वासी, जिनके लिए ये बालक प्राणों के तुल्य हैं, स्वयमेव मर जायेंगे। यदि प्राण नहीं रहेंगे तो फिर शरीर की क्या आवश्यकता? फलस्वरूप अपने अपने पुत्रों के मरने पर व्रज के सारे वासी स्वतः मर जायेंगे।

इति व्यवस्याजगरं बृहद्वपुः
स योजनाययमहाद्रिपीवरम् ।
धृत्वाद्भुतं व्यात्तगुहाननं तदा
पथि व्यशेत ग्रसनाशया खलः ॥ १६॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; व्यवस्य—निश्चय करके; आजगरम्—अजगर; बृहत् वपुः—अत्यन्त भारी शरीर; सः—अघासुर ने; योजन-आयाम—आठ मील भूमि घेरने वाला; महा-अद्रि-पीवरम्—विशाल पर्वत के समान मोटा; धृत्वा—रूप धारण कर; अद्भुतम्—अद्‌भुत; व्यात्त—फैला दिया; गुहा-आननम्—विशाल पर्वत-गुफा जैसे मुँह वाला; तदा—उस समय; पथि—रास्ते में; व्यशेत—घेर लिया; ग्रसन-आशया—सारे ग्वालबालों को निगलने की आशा से; खलः—दुष्ट।

यह निश्चय करने के बाद उस दुष्ट अघासुर ने एक विशाल अजगर का रूप धारण कर लिया, जो विशाल पर्वत की तरह मोटा तथा आठ मील तक लम्बा था। इस तरह अद्‌भुत अजगर का शरीर धारण करने के बाद उसने अपना मुँह पर्वत की एक बड़ी गुफा के तुल्य फैला दिया और रास्ते में कृष्ण तथा उनके संगी ग्वालबालों को निगल जाने की आशा से लेट गया।

धराधरोष्ठो जलदोत्तरोष्ठो
दर्याननान्तो गिरिशृङ्गदंष्ट्रः ।
ध्वान्तान्तरास्यो विततध्वजिह्वः
परुषानिलश्वासदवेक्षणोष्णः ॥ १७॥

शब्दार्थ

धरा—पृथ्वी; अधर-ओष्ठः—जिसका निचला होंठ; जलद-उत्तर-ओष्ठः—जिसका ऊपरी होंठ बादलों को छू रहा था; दरी-आनन-अन्तः—जिसका मुँह पर्वत-गुफा के समान चौड़ाई में फैल गया था; गिरि-शृङ्ग—पर्वत की चोटी के समान; दंष्ट्रः—दाँत; ध्वान्त-अन्तः-आस्यः—मुँह के भीतर का वायुमण्डल यथासम्भव अंधकारपूर्ण था; विवत-अध्व-जिह्वः—जिसकी जीभ चौ रास्ते की भाँति थी; परुष-अनिल-श्वास—जिसकी श्वास गर्म हवा की तरह थी; दव-ईक्षण-उष्णः—जिसकी चितवन आग की लपटों जैसी थी।

उसका निचला होठ पृथ्वी पर था और ऊपरी होठ आकाश के बादलों को छू रहा था। उसके मुख की बगलें पर्वत की विशाल गुफाओं के समान थीं और मुख का मध्य भाग अत्यन्त अंधकारमय था। उसकी जीभ चौ मार्ग के तुल्य थी, उसकी श्वास गर्म हवा जैसी थी और उसकी आँखें आग की लपटों जैसी जल रही थीं।

दृष्ट्वा तं तादृशं सर्वे मत्वा वृन्दावनश्रियम् ।
व्यात्ताजगरतुण्डेन ह्युत्प्रेक्षन्ते स्म लीलया ॥ १८॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देख कर; तम्—उस अघासुर को; तादृशम्—उस अवस्था में; सर्वे—कृष्ण तथा सारे बालकों ने; मत्वा—सोचा कि; वृन्दावन-श्रियम्—वृन्दावन की सुन्दर मूर्ति; व्यात्त—फैला हुआ; अजगर-तुण्डेन—अजगर के मुँह जैसा; हि—निस्सनदेह; उत्प्रेक्षन्ते—मानों देख रहा हो; स्म—भूतकाल में; लीलया—लीला के रूप में।

इस असुर का अद्‌भुत रूप विशाल अजगर के समान था। इसे देख कर बालकों ने सोचा कि हो न हो यह वृन्दावन का कोई रम्य स्थल है। तत्पश्चात् उन्होंने कल्पना की कि यह विशाल अजगर के मुख के समान है। दूसरे शब्दों में, निर्भीक बालकों ने सोचा कि विशाल अजगर रूपी

यह मूर्ति उनके क्रीड़ा-आनन्द के लिए बनाई गई है।

तात्पर्य : इस अद्‌भुत दृश्य को देख कर कुछ बालकों ने सोचा कि यह सचमुच का अजगर है, अत: वे वहाँ से भागने लगे। किन्तु अन्यों ने कहा, ''क्यों भाग रहे हो? ऐसा नहीं हो सकता कि कोई अजगर यहाँ रह सके। यह तो खेलने का रमणीक स्थल है।'' उन सबों ने ऐसी ही कल्पना की।

अहो मित्राणि गदत सत्त्वकूटं पुरः स्थितम् ।
अस्मत्सङ्ग्रसनव्यात्तव्यालतुण्डायते न वा ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

अहो—ओह; मित्राणि—सारे मित्र; गदत—हमें बताओ तो; सत्त्व-कूटम्—मृत अजगर; पुरः स्थितम्—पहले से पड़ा हुआ; अस्मत्—हम सबों को; सङ्ग्रसन—निगलने के लिए; व्यात्त-व्याल-तुण्डा-यते—अजगर ने मुख फैला रखा है; न वा—यह तथ्य है अथवा नहीं।

बालकों ने कहा : मित्रो, क्या यह मृत है या सचमुच यह जीवित अजगर है, जिसने हम सबों को निगलने के लिए अपना मुँह फैला रखा है? इस सन्देह को दूर करो न!

तात्पर्य : सारे मित्र अपने समक्ष पड़े हुए उस अद्‌भुत जीव की सत्यता के विषय में परस्पर विचार-विमर्श करने लगे। क्या यह मृत है या उन्हें निगलने का प्रयास कर रहा जीवित अजगर है?

सत्यमर्ककरारक्तमुत्तराहनुवद्धनम् ।
अधराहनुवद्रोधस्तत्प्रतिच्छाययारुणम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

सत्यम्—यह सचमुच जीवित अजगर है; अर्क-कर-आरक्तम्—धूप जैसा लगने वाला; उत्तरा-हनुवत् घनम्—बादल पर ऊपरी होंठ की तरह; अधरा-हनुवत्—निचले होंठ की तरह; रोधः—विशाल किनारा; तत्-प्रतिच्छायया—धूप के प्रतिबिम्ब से; अरुणम्—लाल-लाल।

तत्पश्चात् उन्होंने निश्चय किया : मित्रो, यह निश्चित रूप से हम सबों को निगल जाने के लिए यहाँ बैठा हुआ कोई पशु है। इसका ऊपरी होंठ सूर्य की धूप से रक्तिम हुए बादल की तरह है और निचला होंठ बादल की लाल-लाल परछाईं-सा लगता है।

प्रतिस्पर्धेते सृक्कभ्यां सव्यासव्ये नगोदरे ।
तुङ्गशृङ्गालयोऽप्येतास्तद्दंष्ट्राभिश्च पश्यत ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

प्रतिस्पर्धेते—के सदृश; सृक्कभ्याम्—मुँह की बगलें, गलफड़; सव्य-असव्ये—बाएँ-दाएँ; नग-उदरे—पर्वत की गुफाएँ; तुङ्ग-शृङ्ग-आलयः—उच्च पर्वत-चोटियाँ; अपि—यद्यपि ऐसा है; एताः तत्-दंष्ट्राभिः—पशु के दाँतों के ही सदृश; च—तथा; पश्यत—देखो न।

बाएँ तथा दाएँ दो खड्ड जैसी पर्वत-गुफाएँ दिखती हैं, वे इसकी गलफड़ें हैं और पर्वत की ऊँची चोटियाँ इसके दाँत हैं।

आस्तृतायाममार्गोऽयं रसनां प्रतिगर्जति ।
एषां अन्तर्गतं ध्वान्तमेतदप्यन्तराननम् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

आस्तृत-आयाम—लम्बाई तथा चौड़ाई; मार्गः अयम्—चौड़ा रास्ता; रसनाम्—जीभ; प्रतिगर्जति—के सदृश है; एषाम् अन्तः-गतम्—पर्वतों के भीतर; ध्वान्तम्—अँधेरा; एतत्—यह; अपि—निस्सन्देह; अन्तः-आननम्—मुँह के भीतर।

इस पशु की जीभ की लम्बाई-चौड़ाई चौ मार्ग जैसी है और इसके मुख का भीतरी भाग अत्यन्त अंधकारमय है मानो पर्वत के भीतर की गुफा हो।

दावोष्णखरवातोऽयं श्वासवद्धाति पश्यत ।
तद्दग्धसत्त्वदुर्गन्धोऽप्यन्तरामिषगन्धवत् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

दाव-उष्ण-खर-वातः अयम्—अग्नि के समान गर्म श्वास बाहर निकल रही है; श्वास-वत् भाति पश्यत—देखो न उसकी श्वास के सदृश है; तत्-दग्ध-सत्त्व—जलते अस्थिपंजरों की; दुर्गन्धः—बुरी महक; अपि—निस्सन्देह; अन्तः-आमिष-गन्ध-वत्—मानों भीतर से आ रही मांस की दुर्गंध हो।

यह अग्नि जैसी गर्म हवा उसके मुँह से निकली हुई श्वास है, जिससे जलते हुए मांस की दुर्गंध आ रही है क्योंकि उसने बहुत शव खा रखे हैं।

अस्मान्किमत्र ग्रसिता निविष्टा-
नयं तथा चेद्बकवद्विनङ्क्ष्यति ।
क्षणादनेनेति बकार्युशन्मुखं
वीक्ष्योद्धसन्तः करताडनैर्ययुः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

अस्मान्—हम सबों को; किम्—क्या; अत्र—यहाँ; ग्रसिता—निगल जायेगा; निविष्टान्—प्रवेश करने का प्रयत्न करने वाले; अयम्—यह पशु; तथा—अतः; चेत्—यदि; बक-वत्—बकासुर के समान; विनङ्क्ष्यति—विनष्ट कर दिया जायेगा; क्षणात्—तुरन्त; अनेन—इस कृष्ण के द्वारा; इति—इस प्रकार; बक-अरि-उशत्-मुखम्—बकासुर के शत्रु कृष्ण के सुन्दर मुखमंडल को; वीक्ष्य—देखकर; उद्धसन्तः—जोर से हँसते हुए; कर-ताडनैः—ताली बजा-बजा कर; ययुः—मुँह के भीतर चले गये।

तब बालकों ने कहा, "क्या यह प्राणी हम लोगों को निगलने आया है? यदि वह निगलेगा तो तुरन्त ही बकासुर की भाँति मार डाला जायेगा।" इस तरह उन्होंने बकासुर के शत्रु कृष्ण के सुन्दर मुख की ओर निहारा और ताली बजा कर जोर-जोर से हँसते हुए वे अजगर के मुँह में प्रविष्ट हो गये।

तात्पर्य : इस भीषण पशु के विषय में तर्क-वितर्क करने के बाद उन्होंने असुर के मुख में प्रवेश करने का निश्चय किया। उन्हें कृष्ण पर पूरा-पूरा विश्वास था क्योंकि उन्हें अनुभव हो चुका था कि कृष्ण ने किस प्रकार उन सबों को बकासुर के मुख से बचाया था। अब यह दूसरा असुर अघासुर था। अत: वे इस असुर के मुख में घुस कर खेल का आनन्द लेना और बकासुर के शत्रु कृष्ण द्वारा बचाया जाना चाहते थे।

इत्थं मिथोऽतथ्यमतज्ज्ञभाषितं
श्रुत्वा विचिन्त्येत्यमृषा मृषायते ।
रक्षो विदित्वाखिलभूतहृत्स्थितः
स्वानां निरोद्धुं भगवान्मनो दधे ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

इत्थम्—इस प्रकार; मिथः—अथवा दूसरा; अतथ्यम्—जो तथ्य नहीं है, ऐसा विषय; अ-तत्-ज्ञ—बिना जाने; भाषितम्—जब वे बातें कर रहे थे; श्रुत्वा—कृष्ण ने सुन कर; विचिन्त्य—सोच कर; इति—इस प्रकार; अमृषा—सचमुच; मृषायते—जो झूठा लग रहा था (वस्तुत: वह पशु अघासुर था किन्तु अल्प-ज्ञान के कारण वे उसे मृत अजगर समझ रहे थे); रक्ष:—(किन्तु कृष्ण समझ गये थे कि) वह असुर है; विदित्वा—जान कर; अखिल-भूत-हृत्-स्थित:—अन्तर्यामी अर्थात् हर एक के हृदय में स्थित होने के कारण; स्वानाम्—अपने संगियों का; निरोद्धुम्—उन्हें मना करने के लिए; भगवान्—भगवान् ने; मन: दधे—संकल्प किया।

हर व्यक्ति के हृदय में स्थित अन्तर्यामी परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण ने बालकों को परस्पर नकली अजगर के विषय में बातें करते सुना। वे नहीं जानते थे कि यह वास्तव में अघासुर था, जो अजगर के रूप में प्रकट हुआ था। यह जानते हुए कृष्ण अपने मित्रों को असुर के मुख में प्रवेश करने से रोकना चाहते थे।

तावत्प्रविष्टास्त्वसुरोदरान्तरं
परं न गीर्णाः शिशवः सवत्साः ।
प्रतीक्षमाणेन बकारिवेशनं
हतस्वकान्तस्मरणेन रक्षसा ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

तावत्—तब तक; प्रविष्टा:—सभी बालक घुस गये; तु—निस्सन्देह; असुर-उदर-अन्तरम्—उस असुर के पेट के भीतर; परम्—लेकिन; न गीर्णा:—निगले नहीं जा सके; शिशव:—सारे बालक; स-वत्सा:—अपने अपने बछड़ों समेत; प्रतीक्षमाणेन—प्रतीक्षारत; बक-अरि—बकासुर के शत्रु का; वेशनम्—प्रवेश; हत-स्व-कान्त-स्मरणेन—वह असुर अपने मृत सम्बन्धियों के बारे में सोच रहा था और तब तक संतुष्ट नहीं होगा जब तक कृष्ण मर न जाय; रक्षसा—असुर द्वारा।

जब तक कि कृष्ण सारे बालकों को रोकने के बारे में सोचें, तब तक वे सभी असुर के मुख में घुस गये। किन्तु उस असुर ने उन्हें निगला नहीं क्योंकि वह कृष्ण द्वारा मारे गये अपने

सम्बन्धियों के विषय में सोच रहा था और अपने मुख में कृष्ण के घुसने की प्रतीक्षा कर रहा था।

तान्वीक्ष्य कृष्णः सकलाभयप्रदो
ह्यनन्यनाथान्स्वकरादवच्युतान् ।
दीनांश्च मृत्योर्जठराग्निघासान्
घृणार्दितो दिष्टकृतेन विस्मितः ॥ २७॥

शब्दार्थ

तान्—उन बालकों को; वीक्ष्य—देखकर; कृष्णः—भगवान् कृष्ण; सकल-अभय-प्रदः—जो सबों को अभय प्रदान करने वाले हैं; हि—निस्सन्देह; अनन्य-नाथान्—विशेषतया उन ग्वालबालों के लिए जो कृष्ण के अतिरिक्त और किसी को नहीं जानते थे; स्व-करात्—अपने हाथ से; अवच्युतान्—गये हुए; दीनान् च—तथा असहाय; मृत्योः जठर-अग्नि-घासान्—जो अघासुर के पेट की अग्नि में तिनकों की तरह प्रविष्ट हो चुके थे और जो असुर बहुत दिलेर और साक्षात् मृत्यु की तरह भूखा था (विशाल शरीर धारण करने से असुर काफी भूखा रहा होगा); घृणा-अर्दितः—अहैतुकी कृपा के कारण दयालु; दिष्ट-कृतेन—भगवान् की अन्तरंगा शक्ति से नियोजित वस्तुओं द्वारा; विस्मितः—वे भी क्षण-भर के लिए आश्चर्यचकित थे।

कृष्ण ने देखा कि सारे ग्वालबाल, जो उन्हें ही अपना सर्वस्व मानते थे, उनके हाथ से निकल कर साक्षात् मृत्यु रूपी अघासुर के उदर की अग्नि में तिनकों जैसे प्रविष्ट हो जाने से असहाय हैं। कृष्ण के लिए अपने इन ग्वालबाल मित्रों से विलग होना असह्य था। अतएव यह देखते हुए कि यह सब उनकी अन्तरंगा शक्ति द्वारा नियोजित किया प्रतीत होता है, कृष्ण आश्चर्यचकित हो उठे और निश्चय न कर पाये कि क्या किया जाय।

कृत्यं किमत्रास्य खलस्य जीवनं
न वा अमीषां च सतां विहिंसनम् ।
द्वयं कथं स्यादिति संविचिन्त्य
ज्ञात्वाविशत्तुण्डमशेषदृग्घरिः ॥ २८॥

शब्दार्थ

कृत्यम् किम्—क्या किया जाय; अत्र—इस दशा में; अस्य खलस्य—इस ईर्ष्यालु असुर का; जीवनम्—जीवन; न—नहीं; वा—अथवा; अमीषाम् च—तथा निर्दोषों का; सताम्—भक्तों का; विहिंसनम्—मृत्यु; द्वयम्—दोनों कार्य (असुर वध तथा बालकों की रक्षा); कथम्—कैसे; स्यात्—सम्भव हो सकता है; इति संविचिन्त्य—इस विषय के बारे में भलीभाँति सोच कर; ज्ञात्वा—और यह निश्चय करके कि क्या करना है; अविशत्—घुस गये; तुण्डम्—असुर के मुख में; अशेष-दृक् हरिः—कृष्ण, जो अपनी असीम शक्ति से भूत, वर्तमान तथा भविष्य को जान सकते हैं।

अब क्या करना होगा? इस असुर का वध और भक्तों का बचाव—एकसाथ दोनों को किस तरह सम्पन्न किया जाय? असीम शक्तिशाली होने से कृष्ण ने ऐसी बुद्धिगम्य युक्ति निकल आने तक प्रतीक्षा करने का निश्चय किया जिसके द्वारा वे बालकों को बचाने के साथ साथ उस असुर का वध भी कर सकें। तत्पश्चात् वे अघासुर के मुख में घुस गये।

तात्पर्य : कृष्ण *अनन्तवीर्यसर्वज्ञ* कहे जाते हैं क्योंकि उन्हें हर बात ज्ञात है। हर बात पूर्णतया जानने के कारण उनके लिए ऐसी युक्ति ढूँढ़ लेना कोई कठिन काम न था जिससे वे बालकों को बचाने के साथ ही असुर को भी मार सकते। इसलिए उन्होंने भी असुर के मुख में घुसने का निश्चय किया।

तदा घनच्छदा देवा भयाद्धाहेति चुक्रुशुः ।
जहृषुर्ये च कंसाद्याः कौणपास्त्वघबान्धवाः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

तदा—उस समय; घन-छदाः—बादलों के पीछे; देवाः—सारे देवता; भयात्—असुर के मुँह में कृष्ण के घुस जाने से डर कर; हा-हा—हाय, हाय; इति—इस प्रकार; चुक्रुशुः—पुकारने लगे; जहृषुः—प्रसन्न हुए; ये—जो; च—भी; कंस-आद्याः—कंस तथा अन्य लोग; कौणपाः—असुरगण; तु—निस्सन्देह; अघ-बान्धवाः—अघासुर के मित्र।

जब कृष्ण अघासुर के मुख में घुस गये तो बादलों के पीछे छिपे देवतागण हाय हाय करने लगे। किन्तु अघासुर के मित्र, यथा कंस तथा अन्य असुरगण अत्यन्त हर्षित थे।

तच्छ्रुत्वा भगवान्कृष्णस्त्वव्ययः सार्भवत्सकम् ।
चूर्णीचिकीर्षोरात्मानं तरसा ववृधे गले ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

तत्—वह हाय हाय की पुकार; श्रुत्वा—सुन कर; भगवान्—भगवान्; कृष्णः—कृष्ण; तु—निस्सन्देह; अव्ययः—कभी विनष्ट न होने वाले; स-अर्भ-वत्सकम्—ग्वालबालों तथा बछड़ों समेत; चूर्णी-चिकीर्षोः—उस राक्षस का जो उन्हें अपने पेट के भीतर चूर्ण कर देना चाहता था; आत्मानम्—स्वयं; तरसा—जल्दी से; ववृधे—; गले—.

तत्—वह हाय हाय की पुकार; श्रुत्वा—सुन कर; भगवान्—भगवान्; कृष्णः—कृष्ण; तु—निस्सन्देह; अव्ययः—कभी विनष्ट न होने वाले; स-अर्भ-वत्सकम्—ग्वालबालों तथा बछड़ों समेत; चूर्णी-चिकीर्षोः—उस राक्षस का जो उन्हें अपने पेट के भीतर चूर्ण कर देना चाहता था; आत्मानम्—स्वयं; तरसा—जल्दी से; विवृधे—बढ़ा लिया; गले—गले के भीतर।

जब अजेय भगवान् कृष्ण ने देवताओं को बादलों के पीछे से हाय हाय पुकारते सुना तो तुरन्त ही उन्होंने स्वयं तथा अपने संगी ग्वालबालों को असुर से बचाने के लिए, जिन्हें वह चूर्ण-चूर्ण कर देना चाहता था, उसके गले के भीतर अपना विस्तार कर लिया।

तात्पर्य : कृष्ण के कार्य ऐसे ही होते हैं। *परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्* (*भगवद्गीता* ४.८)। कृष्ण ने असुर के गले में अपना विस्तार करके उसकी श्वास अवरुद्ध कर दी और उसे मार डाला। इस तरह उन्होंने अपनी तथा अपने संगियों की आसन्न मृत्यु से रक्षा की तथा देवताओं को भी उनके संताप से मुक्त किया।

ततोऽतिकायस्य निरुद्धमार्गिणो
ह्युद्गीर्णदृष्टेर्भ्रमतस्त्वितस्ततः ।
पूर्णोऽन्तरङ्गे पवनो निरुद्धो
मूर्धन्विनिर्भिद्य विनिर्गतो बहिः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्, असुर के गले में शरीर बढ़ा कर मारने के बाद; अति-कायस्य—विशाल शरीर वाले असुर का; निरुद्ध-मार्गिणः—दम घुट जाने से, सारे निकास मार्ग रुकने से; हि उद्गीर्ण-दृष्टेः—आँखें बाहर निकल आई हुईं; भ्रमतः तु इतः ततः—पुतलियाँ या प्राणवायु इधर-उधर चलती हुईं; पूर्णः—पूरी तरह मरा; अन्तः-अङ्गे—शरीर के भीतर; पवनः—प्राणवायु; निरुद्धः—रुका हुआ; मूर्धन्—सिर के ऊपर का छेद; विनिर्भिद्य—तोड़ कर; विनिर्गतः—निकल गया; बहिः—बाहर।

चूँकि कृष्ण ने अपने शरीर का आकार बढ़ा दिया था इसलिए असुर ने अपने शरीर को काफी बड़ा कर लिया। फिर भी उसकी श्वास रुक गई उसका दम घुट गया और उसकी आँखें इधर-उधर भटकने लगीं तथा बाहर निकल आईं। किन्तु असुर के प्राण किसी भी छेद से निकल नहीं पा रहे थे अतः अन्त में उसके सिर के ऊपरी छेद से बाहर फूट पड़े।

तेनैव सर्वेषु बहिर्गतेषु
प्राणेषु वत्सान्सुहृदः परेतान् ।
दृष्ट्या स्वयोत्थाप्य तदन्वितः पुन-
र्वक्त्रान्मुकुन्दो भगवान्विनिर्ययौ ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

तेन एव—उसी ब्रह्मरन्ध्र अर्थात् सिर के ऊपरी छेद से; सर्वेषु—शरीर के भीतर की सारी वायु; बहिः गतेषु—बाहर जाने से; प्राणेषु—प्राणों के; वत्सान्—बछड़े; सुहृदः—ग्वालबाल मित्र; परेतान्—जो भीतर मर चुके थे; दृष्ट्या स्वया—कृष्ण की चितवन से; उत्थाप्य—पुनः जीवित करके; तत्-अन्वितः—उनके साथ; पुनः—फिर; वक्त्रात्—मुख से; मुकुन्दः—भगवान्; भगवान्—कृष्ण; विनिर्ययौ—बाहर आ गये।

जब उस असुर के सिर के ऊपरी छेद से सारी प्राणवायु निकल गई तो कृष्ण ने मृत बछड़ों तथा ग्वालबालों पर अपनी दृष्टि फेर कर उन्हें फिर से जीवित कर दिया। तब मुकुन्द जो किसी को भी मुक्ति दे सकते हैं अपने मित्रों तथा बछड़ों समेत उस असुर के मुख से बाहर आ गये।

पीनाहिभोगोत्थितमद्भुतं महत्-
ज्योतिः स्वधाम्ना ज्वलयद्दिशो दश ।
प्रतीक्ष्य खेऽवस्थितमीशनिर्गमं
विवेश तस्मिन्मिषतां दिवौकसाम् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

पीन—अत्यन्त विशाल; अहि-भोग-उत्थितम्—भौतिक भोग के लिए बने सर्प के शरीर के निकलने वाली; अद्भुतम्—विचित्र; महत्—महान्; ज्योतिः—तेज; स्व-धाम्ना—अपने प्रकाश से; ज्वलयत्—चमकाता हुआ; दिशः दश—दशों दिशाएँ; प्रतीक्ष्य—

प्रतीक्षा करके; खे—आकाश में; अवस्थितम्—स्थित; ईश-निर्गमम्—भगवान् के बाहर आने तक; विवेश—प्रवेश किया; तस्मिन्—कृष्ण के शरीर में; मिषताम्—देखते देखते; दिवौकसाम्—देवताओं के।

उस विराट अजगर के शरीर से सारी दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ एक प्रकाशमान तेज निकला और आकाश में अकेले तब तक रुका रहा जब तक कृष्ण उस शव के मुख से बाहर नहीं आ गये। तत्पश्चात् सारे देवताओं ने इस तेज को कृष्ण के शरीर में प्रवेश करते देखा।

तात्पर्य : ऐसा प्रतीत होता है कि अघासुर नामक सर्प को कृष्ण के शरीर में प्रवेश करने और उनकी संगति प्राप्त होने से मुक्ति मिली। कृष्ण के शरीर में प्रवेश करना *सायुज्यमुक्ति* कहलाती है किन्तु अगले श्लोकों से सिद्ध होता है कि दन्तवक्र तथा अन्यों की तरह अघासुर को *सारूप्यमुक्ति* प्राप्त हुई। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने श्रील जीव गोस्वामी कृत *वैष्णव तोषणी* से उद्धरण देते हुए इसका विशद वर्णन किया है। अघासुर को सारूप्यमुक्ति मिली अर्थात् विष्णु जैसे चतुर्भुज शरीर के साथ वैकुण्ठ लोक में रहने का अवसर मिला। ऐसा कैसे हुआ इसकी व्याख्या संक्षेप में इस प्रकार है—

जो तेज अजगर के शरीर से निकला वह आध्यात्मिक *शुद्धसत्त्व* पाकर और भौतिक कल्मष से मुक्त होकर शुद्ध बन गया क्योंकि उसकी मृत्यु के बाद भी कृष्ण उसके शरीर के भीतर रहते रहे। यह सन्देह व्यक्त किया जा सकता है कि ऐसे उत्पाती असुर को *सारूप्य* या *सायुज्य* मुक्ति कैसे प्राप्त हो सकी? और इस पर आश्चर्य भी होता है किन्तु कृष्ण इतने कृपालु हैं कि ऐसे संशयों को दूर करने के लिए उन्होंने अजगर के प्राण को तेज रूप में सभी देवताओं की उपस्थिति में कुछ काल तक प्रतीक्षा करने दिया।

कृष्ण पूर्ण तेज हैं और हर जीव उस तेज का अंश है। जैसाकि यहाँ सिद्ध है हर जीव का अपना अपना तेज होता है। असुर का तेज कुछ काल तक उसके शरीर के बाहर रहता रहा और वह पूर्ण तेज अर्थात् *ब्रह्मज्योति* से मिल नहीं पाया। यह ब्रह्मज्योति भौतिक आँखों को दिखाई नहीं पड़ती किन्तु यह सिद्ध करने के लिए हर व्यक्ति व्यष्टि है, कृष्ण ने व्यष्टि तेज को असुर के शरीर से बाहर कुछ समय तक खड़ा रहने दिया जिससे हर कोई उसे देख सके। तब कृष्ण ने यह सिद्ध किया कि जो भी उनके द्वारा मारा जाता है उसे मुक्ति मिलती है, चाहे वह सायुज्य हो, सारूप्य हो, सामीप्य हो या अन्य कुछ।

जो लोग प्रेम के दिव्य पद को प्राप्त हैं उनकी मुक्ति विशेष प्रकार की—*विमुक्ति*—होती है। इस तरह सर्प सर्वप्रथम कृष्ण के शरीर में प्रविष्ट हुआ और तब ब्रह्मज्योति से मिल गया। यह विलय

सायुज्यमुक्ति कहलाती है। किन्तु बाद के श्लोकों में हम देखते हैं कि अघासुर को *सारूप्यमुक्ति* मिली। श्लोक ३८ में बतलाया गया है कि अघासुर को विष्णु जैसा शरीर प्राप्त हुआ और अगले श्लोक में स्पष्ट तौर पर यह भी बताया गया है कि उसे नारायण जैसा पूरी तरह आध्यात्मिक शरीर प्राप्त हुआ। अतएव *भागवत* में दो-तीन स्थानों पर इसकी पुष्टि हुई है कि अघासुर को *सारूप्यमुक्ति* मिली। पुन: यह तर्क किया जा सकता है कि वह ब्रह्मज्योति में कैसे मिल गया? इसका उत्तर यह है कि जय तथा विजय को तीन जन्मों के बाद पुन: सारूप्यमुक्ति मिली और अघासुर को भी भगवान् के सान्निध्य के कारण ऐसी ही मुक्ति मिली।

ततोऽतिहृष्टा: स्वकृतोऽकृतार्हणं
पुष्पै: सुगा अप्सरसश्च नर्तनै: ।
गीतै: सुरा वाद्यधराश्च वाद्यकै:
स्तवैश्च विप्रा जयनि:स्वनैर्गणा: ॥ ३४॥

शब्दार्थ

तत:—तत्पश्चात्; अति-हृष्टा:—अत्यन्त प्रसन्न; स्व-कृत:—अपना अपना कार्य; अकृत—पूरा किया; अर्हणम्—भगवान् की पूजा रूप में; पुष्पै:—नन्दन कानन में उगे फूलों की वर्षा से; सु-गा:—दैवी गायक; अप्सरस: च—देवलोक की नर्तकियाँ; नर्तनै:—नाच से; गीतै:—देवलोक के गीत गाने से; सुरा:—सारे देवता; वाद्य-धरा: च—तथा ढोल बजाने वाले; वाद्यकै:—बाजा बजा करके; स्तवै: च—तथा स्तुतियों द्वारा; विप्रा:—ब्राह्मणगण; जय-नि:स्वनै:—भगवान् की महिमा गायन से; गणा:—हर कोई।

तत्पश्चात् हर एक के प्रसन्न होने पर देवता लोग नन्दन कानन से फूल बरसाने लगे, अप्सराएँ नाचने लगीं और गायन के लिए प्रसिद्ध गन्धर्वगण स्तुति गाने लगे। ढोलकिये दुन्दुभी बजाने लगे तथा ब्राह्मण वैदिक स्तुतियाँ करने लगे। इस प्रकार स्वर्ग तथा पृथ्वी दोनों पर हर व्यक्ति भगवान् की महिमा का गायन करते हुए अपना अपना कार्य करने लगा।

तात्पर्य : हर एक का विशेष कार्य होता है। शास्त्रों ने निरूपित किया है कि हर व्यक्ति अपनी अपनी योग्यताओं के अनुसार भगवान् की महिमाओं का गायन करे। यदि आप गायक हैं, तो अच्छी तरह गा कर भगवान् का गुणगान करें। यदि आप संगीतज्ञ हैं, तो वाद्ययंत्रों द्वारा उनका गुणगान करें। *स्वनुष्ठितस्य धर्मस्य संसिद्धिर्हरि तोषणम्* (*भागवत* १.२.१३)। जीवन का साफल्य भगवान् को तुष्ट करने में है। इसलिए पृथ्वी से लेकर देवलोक तक हर व्यक्ति भगवान् का गुणगान करने में लगा हुआ है। सभी महान् सन्त-पुरुषों का यही निर्णय है कि मनुष्य जो भी योग्यताएँ अर्जित कर चुका है उनका

उपयोग भगवान् का गुणगान करने में करे।

इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा

स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः।

अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो

यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम् ॥

''विद्वान मुनियों ने निश्चित निष्कर्ष निकाला है कि ज्ञान, तप, वैदिक अध्ययन, यज्ञ, स्तुति तथा दान की उन्नति का अमोघ उद्देश्य भगवान् के गुणों का उत्तम श्लोकों में दिव्य वर्णन करना है।'' (*भागवत* १.५.२२)। यही जीवन की सिद्धि है। मनुष्य को उसके अपने गुणों के अनुसार भगवान् के गुणगान करने की शिक्षा दी जानी चाहिए। शिक्षा, तप या आधुनिक जगत में व्यापार, उद्योग, शिक्षा आदि—इन सबको भगवान् के गुणगान में लगाना चाहिए। तभी संसार का हर व्यक्ति सुखी हो सकेगा।

इसलिए कृष्ण अपनी दिव्य क्रीड़ाएँ प्रदर्शित करने हेतु आते हैं जिससे लोगों को हर तरह से उनका गुणगान करने का अवसर मिल सके। किन्तु भगवान् का गुणगान किस तरह किया जाय यह समझ पाना शोध का विषय है। ऐसा नहीं है कि ईश्वर के बिना हर बात समझी जा सके। इसकी निन्दा की जाती है।

भगवद्भक्तिहीनस्य जातिः शास्त्रं जपस्तपः।

अप्राणस्यैव देहस्य मण्डनं लोकरञ्जनम्॥

(*हरिभक्ति सुधोदय* ३.११)

भगवद्भक्ति अथवा भगवान् के गुणगान के बिना हमारे पास जो भी है, वह शव को सजाने के समान है।

तदद्भुतस्तोत्रसुवाद्यगीतिका-
जयादिनैकोत्सवमङ्गलस्वनान् ।
श्रुत्वा स्वधाम्नोऽन्त्यज आगतोऽचिराद्
दृष्ट्वा महीशस्य जगाम विस्मयम् ॥ ३५॥

शब्दार्थ

तत्—उस (स्वर्गलोक में देवताओं द्वारा मनाया गया उत्सव); अद्भुत—विचित्र; स्तोत्र—स्तुति; सु-वाद्य—अच्छे अच्छे बाजे; गीतिका—दैवी गीत; जय-आदि—जयजयकार इत्यादि.; न-एक-उत्सव—भगवान् के गुणगान के लिए ही उत्सव; मङ्गल-

स्वनान्—हर एक के लिए शुभ दिव्य ध्वनियाँ; श्रुत्वा—ऐसी ध्वनि सुन कर; स्व-धाम्नः—अपने धाम से; अन्ति—पास ही; अजः—ब्रह्म; आगतः—वहाँ आ गये; अचिरात्—तुरन्त; दृष्ट्वा—देखकर; महि—गुणगान; ईशस्य—कृष्ण का; जगाम विस्मयम्—विस्मित हो गये।

जब भगवान् ब्रह्मा ने अपने लोक के निकट ही ऐसा अद्भुत उत्सव होते सुना, जिसके साथ साथ संगीत, गीत तथा जयजयकार हो रहा था, तो वे तुरन्त उस उत्सव को देखने चले आये। कृष्ण का ऐसा गुणगान देखकर वे अत्यन्त विस्मित थे।

तात्पर्य : *अन्ति* का अर्थ है ''निकट'' जिससे सूचित होता है कि उच्च लोकों में भी ब्रह्मलोक के निकट महर्लोक, जनलोक, तपोलोक इत्यादि में भी कृष्ण के गुणगान का उत्सव चल रहा था।

राजन्नाजगरं चर्म शुष्कं वृन्दावनेऽद्भुतम् ।
व्रजौकसां बहुतिथं बभूवाक्रीडगह्वरम् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

राजन्—हे महाराज परीक्षित; आजगरम् चर्म—अघासुर का शुष्क शरीर जो बड़े चमड़े के रूप में बचा था; शुष्कम्—सूखा; वृन्दावने अद्भुतम्—वृन्दावन में विचित्र अजायबघर की तरह; व्रज-ओकसाम्—व्रजभूमि के निवासियों के लिए; बहु-तिथम्—काफी दिनों तक; बभूव—बन गया; आक्रीड—क्रीड़ा स्थल; गह्वरम्—गुफा।

हे राजा परीक्षित, जब अघासुर का अजगर के आकार का शरीर सूख कर विशाल चमड़ा बन गया तो यह वृन्दावनवासियों के देखने जाने के लिए अद्भुत स्थान बन गया और ऐसा बहुत समय तक बना रहा।

एतत्कौमारजं कर्म हरेरात्माहिमोक्षणम् ।
मृत्योः पौगण्डके बाला दृष्ट्वोचुर्विस्मिता व्रजे ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

एतत्—अघासुर तथा कृष्ण के संगियों के उद्धार की यह घटना; कौमार-जम् कर्म—कौमार (५ वर्ष की) अवस्था में सम्पन्न; हरेः—भगवान् की; आत्म—भक्तजन भगवान् की आत्मा हैं; अहि-मोक्षणम्—उनका मोक्ष तथा अजगर का मोक्ष; मृत्योः—जन्म-मरण के मार्ग से; पौगण्डके—पौगण्ड अवस्था में (जो ५ वर्ष के एक वर्ष बाद शुरू होती है); बालाः—सारे बालक; दृष्ट्वा ऊचुः—एक वर्ष बाद यह बात प्रकट की; विस्मिताः—मानो उसी दिन की घटना हो; व्रजे—वृन्दावन में।

स्वयं तथा अपने साथियों को मृत्यु से बचाने तथा अजगर रूप अघासुर को मोक्ष देने की घटना तब घटी जब कृष्ण पाँच वर्ष के थे। इसका उद्घाटन व्रजभूमि में एक वर्ष बाद हुआ मानो यह उसी दिन की घटना हो।

तात्पर्य : *मोक्षणम्* शब्द का अर्थ है ''मोक्ष।'' कृष्ण के साथियों के लिए तथा कृष्ण के अपने लिए, मोक्ष का प्रश्न ही नहीं उठता, वे आध्यात्मिक जगत में होने से पहले से मुक्त हैं। भौतिक जगत

में जन्म, मृत्यु, जरा तथा रोग होते हैं किन्तु आध्यात्मिक जगत में ऐसा कुछ नहीं है। वहाँ तो हर वस्तु शाश्वत है। किन्तु अघासुर ने भी कृष्ण तथा उनके भक्तों के सान्निध्य से शाश्वत जीवन की वही सुविधाएँ प्राप्त कर लीं। इसीलिए *आत्माहिमोक्षणम्* शब्द से इंगित किया गया है कि यदि अघासुर को भगवान् का सान्निध्य प्राप्त हो सका तो उनके विषय में क्या कहा जाय जो पहले से ही भगवान् के संगी हैं? *साकं विजह्रु: कृतपुण्यपुञ्जा:* (*भागवत* १०.१२.११)। यहाँ पर इसका प्रमाण है कि ईश्वर हर एक के लिए शुभ हैं। यहाँ तक कि जब वे किसी को मारते हैं, तो उसे मुक्ति मिल जाती है, अत: उनके विषय में क्या कहा जाये जो पहले से भगवान् की संगति में हैं।

नैतद्विचित्रं मनुजार्भमायिन:
परावराणां परमस्य वेधस: ।
अघोऽपि यत्स्पर्शनधौतपातक:
प्रापात्मसाम्यं त्वसतां सुदुर्लभम् ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; एतत्—यह; विचित्रम्—अद्भुत है; मनुज-अर्भ-मायिन:—कृष्ण के लिए जो नन्द तथा यशोदा पर दयालु होने के कारण उनके पुत्र रूप में प्रकट हुए; पर-अवराणाम्—समस्त कार्यों तथा कारणों का; परमस्य वेधस:—परम स्त्रष्टा का; अघ: अपि—अघासुर भी; यत्-स्पर्शन—जिनके स्पर्श मात्र से; धौत-पातक:—संसार के सारे कल्मषों से मुक्त हो गया; प्राप—प्राप्त किया; आत्म-साम्यम्—नारायण जैसा शरीर; तु—लेकिन; असताम् सुदुर्लभम्—जो कलुषित आत्माओं के लिए संभव नहीं है किन्तु भगवान् की दया से सबकुछ संभव हो सकता है।.

कृष्ण समस्त कारणों के कारण हैं। भौतिक जगत—उच्च तथा निम्न जगत—के कार्य-कारण आदि नियन्ता भगवान् द्वारा ही सृजित होते हैं। जब कृष्ण नन्द महाराज तथा यशोदा के पुत्र रूप में प्रकट हुए तो उन्होंने अपनी अहैतुकी कृपा से ऐसा किया। अत: उनके लिए अपने असीम ऐश्वर्य का प्रदर्शन कोई विचित्र बात न थी। हाँ, उन्होंने ऐसी महती कृपा प्रदर्शित की कि सर्वाधिक पापी दुष्ट अघासुर भी ऊपर उठ गया और उनके संगियों में से एक बन गया और उसने सारूप्य मुक्ति प्राप्त की जो वस्तुत: भौतिक कलुषों से युक्त पुरुषों के लिए प्राप्त कर पाना असम्भव है।

तात्पर्य : प्रेम के प्रसंग में *माया* शब्द भी व्यवहृत किया जाता है। मायावश ही पिता अपने पुत्र से प्रेम करता है। अत: *मायिन:* शब्द सूचित करता है कि कृष्ण प्रेमवश नन्द महाराज के पुत्र रूप में प्रकट हुए और मानवी शिशु (*मनुजार्भ*) का रूप धारण कर लिया। कृष्ण समस्त कारणों के कारण हैं। वे

कार्य-कारण के स्त्रष्टा हैं और परम नियन्ता हैं। उनके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। अत: अघासुर जैसे जीव को भी उन्होंने *सारूप्य मुक्ति* प्रदान की। कृष्ण के लिए यह तनिक भी विचित्र नहीं है। कृष्ण को अपने संगियों के साथ साथ अघासुर के मुँह में प्रवेश करने में आनन्द आया। अत: जब अघासुर को उनकी इस क्रीड़ा का सान्निध्य जो आध्यात्मिक जगत में होता है, प्राप्त हुआ तो उसके सारे कल्मष धुल गये और कृष्ण की कृपा से उसे सारुप्य मुक्ति तथा विमुक्ति प्राप्त हुई। कृष्ण के लिए यह कोई अनोखी बात न थी।

सकृद्यदङ्गप्रतिमान्तराहिता
मनोमयी भागवतीं ददौ गतिम् ।
स एव नित्यात्मसुखानुभूत्यभि-
व्युदस्तमायोऽन्तर्गतो हि किं पुन: ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

सकृत्—केवल एक बार; यत्—जिसका; अङ्ग-प्रतिमा—भगवान् का स्वरूप (वैसे रूप अनेक हैं किन्तु कृष्ण आदि रूप है); अन्त:-आहिता—अपने अन्तर में रखते हुए; मन:-मयी—बलपूर्वक उनका चिन्तन करते हुए; भागवतीम्—जो भगवान् की भक्ति प्रदान करने में सक्षम है; ददौ—कृष्ण ने प्रदान किया; गतिम्—सर्वोत्तम स्थान; स:—वे (भगवान्); एव—निस्सन्देह; नित्य—सदैव; आत्म—सारे जीवों का; सुख-अनुभूति—उनके चिन्तन मात्र से दिव्य आनन्द प्राप्त होता है; अभिव्युदस्त-माय:—क्योंकि वे सारे मोह को दूर कर देते हैं; अन्त:-गत:—हृदय के भीतर सदैव स्थित रहने वाले; हि—निस्सन्देह; किम् पुन:—क्या कहा जाय।

यदि कोई केवल एक बार या बलपूर्वक भी अपने मन में भगवान् के स्वरूप को लाता है, तो उसे कृष्ण की दया से परम मोक्ष प्राप्त हो सकता है, जिस प्रकार अघासुर को प्राप्त हुआ। तो फिर उन लोगों के विषय में क्या कहा जाय जिनके हृदयों में भगवान् अवतार लेकर प्रविष्ट होते हैं अथवा उनका जो सदैव भगवान् के चरणकमलों का ही चिन्तन करते रहते हैं, जो सारे जीवों के लिए दिव्य आनन्द के स्त्रोत हैं और जो सारे मोह को पूरी तरह हटा देते हैं?

तात्पर्य : यहाँ भगवान् की कृपा प्राप्त करने की विधि बतलाई गई है। *यत्पादपंकजपलाश विलासभक्त्या* (*भागवत* ४.२२.३९)। कृष्ण का चिन्तन करने मात्र से उन्हें बड़ी आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। यह भी बतलाया गया है कि कृष्ण के चरणकमल सदैव भक्तों के हृदयों में स्थित रहते हैं (*भगवान् भक्तहृदि स्थित:*)। अघासुर के बारे में यह तर्क किया जा सकता है कि वह भक्त न था। इसका उत्तर यह है कि उसने क्षण-भर भक्तिपूर्वक कृष्ण का चिन्तन किया। *भक्त्याहम् एकया ग्राह्य:।* बिना भक्ति के कोई कृष्ण का चिन्तन नहीं कर सकता, इसके विपरीत जब कोई कृष्ण का चिन्तन

करता है, तो उसमें निश्चित रूप से भक्ति होती है। यद्यपि अघासुर का उद्देश्य कृष्ण को मार डालना था किन्तु क्षण-भर उसने कृष्ण का चिन्तन भक्तिपूर्वक किया और कृष्ण तथा उनके संगियों ने अघासुर के मुख के भीतर क्रीड़ा करनी चाही। इसी तरह पूतना कृष्ण को विष देकर मारना चाहती थी किन्तु कृष्ण ने उसे माता का आदर किया क्योंकि उन्होंने उसका स्तन-पान किया था। *स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्* (*भगवद्गीता* २.४०)। विशेष रूप से जब कृष्ण अवतार के रूप में प्रकट होते हैं और जो कोई व्यक्ति कृष्ण के इन विविध अवतारों का (*रामादि मूर्तिषु कलानियमेन तिष्ठन्*) चिन्तन करता है, विशेष रूप से उनके आदि रूप कृष्ण का तो उसे मुक्ति प्राप्त होती है। इसके अनेक दृष्टान्त हैं जिनमें से अघासुर भी है, जिसने सारूप्य मुक्ति प्राप्त की। अतएव विधि यह है—*सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः* (*भगवद्गीता* ९.१४)। अतः भक्त लोग सदैव कृष्ण का गुणगान करने में लगे रहते हैं। *अद्वैतमच्युतमनादिमनन्तरूपम्*—जब हम कृष्ण का उल्लेख करते हैं, तो हम उनके सारे अवतारों यथा कृष्ण, गोविन्द, नारायण, विष्णु, चैतन्य, कृष्ण-बलराम तथा श्यामसुन्दर का उल्लेख करते हैं। जो सदैव कृष्ण का चिन्तन करता है उसे विमुक्ति जो भगवान् के निजी संगी के तौर पर विशेष मुक्ति होती है, प्राप्त होनी चाहिए, भले ही वह वृन्दावन में न हो, कम से कम वैकुण्ठ लोक में तो हो। यह *सारूप्य मुक्ति* कहलाती है।

श्रीसूत उवाच
इत्थं द्विजा यादवदेवदत्तः
श्रुत्वा स्वरातुश्चरितं विचित्रम् ।
पप्रच्छ भूयोऽपि तदेव पुण्यं
वैयासकिं यन्निगृहीतचेताः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

श्री-सूतः उवाच—श्री सूत गोस्वामी ने नैमिषारण्य में एकत्र सन्तों से कहा; इत्थम्—इस प्रकार; द्विजाः—हे विद्वान ब्राह्मणो; यादव-देव-दत्तः—महाराज परीक्षित (या युधिष्ठिर) जिसकी रक्षा यादवदेव कृष्ण ने की थी; श्रुत्वा—सुन कर; स्व-रातुः—माता के गर्भ में अपने रक्षक कृष्ण का; चरितम्—कार्यकलाप; विचित्रम्—अत्यन्त अद्भुत; पप्रच्छ—पूछा; भूयः अपि—पुनः पुनः; तत् एव—ऐसे कार्यकलाप; पुण्यम्—पुण्यकर्मों से पूर्ण (शृण्वतां स्वकथाः कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः, कृष्ण का श्रवण करना सदैव पुण्य है); वैयासकिम्—शुकदेव गोस्वामी को; यत्—क्योंकि; निगृहीत-चेताः—परीक्षित महाराज पहले ही कृष्ण का स्थिर मन से श्रवण कर रहे थे।

श्री सूत गोस्वामी ने कहा : हे विद्वान सन्तो, श्रीकृष्ण की बाल्यकाल की लीलाएँ अत्यन्त अद्भुत हैं। महाराज परीक्षित अपनी माता के गर्भ में उन्हें बचाने वाले कृष्ण की उन लीलाओं के

विषय में सुन कर स्थिरचित्त हो गये और उन्होंने शुकदेव गोस्वामी से फिर कहा कि वे उन पुण्य लीलाओं को सुनायें।

श्रीराजोवाच
ब्रह्मन्कालान्तरकृतं तत्कालीनं कथं भवेत् ।
यत्कौमारे हरिकृतं जगुः पौगण्डकेऽर्भकाः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—महाराज परीक्षित ने पूछा; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण (शुकदेव गोस्वामी); काल-अन्तर-कृतम्—भूतकाल में भिन्न अवस्था में (कौमार अवस्था) किये गये कर्म; तत्-कालीनम्—उसे अब घटित होते वर्णन किया (पौगण्ड अवस्था में); कथम् भवेत्—यह कैसे हो सकता है; यत्—जो लीला; कौमारे—कौमार अवस्था में; हरि-कृतम्—कृष्ण द्वारा की गई; जगुः—वर्णन किया; पौगण्डके—पौगण्ड अवस्था में (एक वर्ष बाद); अर्भकाः—सारे बालकों ने।.

महाराज परीक्षित ने पूछा: हे मुनि, भूतकाल में घटित इन घटनाओं को वर्तमान में घटित होते क्यों वर्णन किया गया है? भगवान् कृष्ण ने अघासुर को मारने का कार्य तो अपनी कौमारावस्था में सम्पन्न किया था। तो फिर बालकों ने, उनकी पौगण्ड अवस्था में, इस घटना को अभी घटित क्यों बतलाया?

तद्ब्रूहि मे महायोगिन्परं कौतूहलं गुरो ।
नूनमेतद्धरेरेव माया भवति नान्यथा ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

तत् ब्रूहि—अतः आप बतलायें; मे—मुझको; महा-योगिन्—हे महान् योगी; परम्—अत्यन्त; कौतूहलम्—उत्सुकता; गुरो—हे गुरु; नूनम्—अन्यथा; एतत्—यह घटना; हरेः—भगवान् की; एव—निस्सन्देह; माया—माया; भवति—है; न अन्यथा—और कुछ नहीं।.

हे महायोगी, मेरे आध्यात्मिक गुरु, कृपा करके बतलायें कि यह कैसे हुआ? मैं यह जानने के लिए परम उत्सुक हूँ। मैं सोचता हूँ कि यह कृष्ण की अन्य माया के अतिरिक्त और कुछ न था।

तात्पर्य : कृष्ण की अनेक शक्तियाँ हैं— *परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते* (*श्वेताश्वतर उपनिषद* ६.८)। अघासुर का वृतान्त एक वर्ष के बाद प्रकट किया गया। इसमें कृष्ण की कोई शक्ति निहित होगी। इसीलिए महाराज परीक्षित इसके विषय में जानने के लिए परम उत्सुक थे और उन्होंने शुकदेव गोस्वामी से इसे बतलाने के लिए प्रार्थना की।

वयं धन्यतमा लोके गुरोऽपि क्षत्रबन्धवः ।
वयं पिबामो मुहुस्त्वत्तः पुण्यं कृष्णकथामृतम् ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

वयम्—हम हैं; धन्य-तमाः—सर्वाधिक धन्य; लोके—इस जगत में; गुरो—हे प्रभु, हे मेरे आध्यात्मिक गुरु; अपि—यद्यपि; क्षत्र-बन्धवः—क्षत्रियों में निम्नतम (क्योंकि हमने क्षत्रियों जैसा कार्य नहीं किया); वयम्—हम है; पिबामः—पी रहे हैं; मुहुः—सदैव; त्वत्तः—तुमसे; पुण्यम्—पवित्र; कृष्ण-कथा-अमृतम्—कृष्ण-कथा का अमृत।

हे प्रभु, हे मेरे आध्यात्मिक गुरु, यद्यपि हम क्षत्रियों में निम्नतम हैं, फिर भी हमारा अहोभाग्य है कि हम लाभान्वित हुए हैं क्योंकि हमें आपसे भगवान् के अमृतमय पवित्र कार्यकलापों का निरन्तर श्रवण करते रहने का अवसर प्राप्त हुआ है।

तात्पर्य : भगवान् के पुण्य कार्यकलाप अत्यन्त गुह्य हैं। साधारणतया इन कार्यकलापों को सुन पाना संभव नहीं होता। जो अत्यन्त भाग्यशाली होता है, वही इन्हें सुन पाता है। परीक्षित महाराज ने अपने को *क्षत्रबन्धवः* माना है, जिसका अर्थ है ''क्षत्रियों में निम्नतम।'' क्षत्रियों के गुणों का वर्णन *भगवद्गीता* में हुआ है यद्यपि क्षत्रिय का सामान्य गुण *ईश्वर भाव* है अर्थात् शासन करने की प्रवृत्ति किन्तु ब्राह्मण के ऊपर शासन चलाने की उससे आशा नहीं की जाती। इस तरह महाराज परीक्षित पश्चाताप कर रहे थे कि उन्होंने ब्राह्मणों के ऊपर शासन करना चाहा इसीलिए उन्हें शापित होना पड़ा। वे अपने को क्षत्रियों में निम्नतम मानते थे। *दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्* (*भगवद्गीता* १८.४३)। इसमें संशय नहीं है कि महाराज परीक्षित में क्षत्रिय के अच्छे गुण थे किन्तु भक्त के रूप में उन्होंने दीनतावश तथा विनम्रतावश अपने को क्षत्रियों में निम्नतम रूप में प्रस्तुत किया क्योंकि उन्हें ब्राह्मण के गले में मृत सर्प डालने का अपना कार्य स्मरण था। विद्यार्थी तथा शिष्य को अधिकार है कि वह गुरु से किसी गुह्य सेवा के लिए पूछे और गुरु का कर्तव्य है कि वह अपने शिष्य को इन गुह्य विषयों को बतलाये।

श्रीसूत उवाच
इत्थं स्म पृष्टः स तु बादरायणि-
स्तत्स्मारितानन्तहृताखिलेन्द्रियः ।
कृच्छ्रात्पुनर्लब्धबहिर्दृशिः शनैः
प्रत्याह तं भागवतोत्तमोत्तम ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

श्री-सूतः उवाच—श्री सूत गोस्वामी ने कहा; इत्थम्—इस प्रकार; स्म—भूतकाल में; पृष्टः—पूछे जाने पर; सः—उसने; तु—निस्सन्देह; बादरायणिः—शुकदेव गोस्वामी; तत्—उनसे (शुकदेव गोस्वामी से); स्मारित-अनन्त—कृष्ण का स्मरण किये जाते

ही; हृत—भाव में लीन; अखिल-इन्द्रियः—बाह्य इन्द्रियों के सारे कार्य; कृच्छ्रात्—बड़ी मुश्किल से; पुनः—फिर; लब्ध-बहिः-दृशिः—बाह्य अनुभूति के जागृत होने पर; शनैः—धीरे धीरे; प्रत्याह—उत्तर दिया; तम्—महाराज परीक्षित को; भागवत-उत्तम-उत्तम—हे महान् सन्त-पुरुष, समस्त भक्तों में श्रेष्ठ (शौनक)।

सूत गोस्वामी ने कहा, ''हे सन्तों तथा भक्तों में सर्वश्रेष्ठ शौनक, जब महाराज परीक्षित ने शुकदेव गोस्वामी से इस तरह पूछा तो तुरन्त अपने अन्तःकरण में कृष्ण-लीलाओं का स्मरण करते हुए अपनी इन्द्रियों के कार्यों से उनका बाह्य सम्पर्क टूट गया। तत्पश्चात् बड़ी मुश्किल से उनकी बाह्य चेतना वापस आयी और वे कृष्ण-कथा के विषय में महाराज परीक्षित से बातें करने लगे।

इस तरह श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध के अन्तर्गत ''अघासुर का वध'' नामक बारहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।